International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(2): 71-73

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(1): 71-73
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 13-01-2021
Accepted: 15-02-2021

डॉ० अनीता
(असि० प्रोफेसर), संस्कृत विभाग, डी.ई.आई., दयालबाग, आगरा, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ० अनीता
(असि० प्रोफेसर), संस्कृत विभाग, डी.ई.आई., दयालबाग, आगरा, उत्तर प्रदेश, भारत

'रघुवंशम्' महाकाव्य में मिथक : एक अनुशीलन

डॉ० अनीता

प्रस्तावना

साहित्य में जो भी वर्णन प्राप्त होता है, वह छोटे–छोटे कथानकों एवं घटनाक्रमों के माध्यम से ज्ञानपरक भावात्मक अभिव्यक्ति है। वेद में आख्यान–उपाख्यानों के माध्यम से, पौराणिक–साहित्य में प्रतीकों के माध्यम से तथा परवर्ती साहित्य में मान्यताओं, रीति–रिवाजों तथा परम्परा के माध्यम से उन अनुभवों को ग्रन्थित किया गया है। साहित्य में वर्णित इन सब रीति–रिवाजों, सत्य–असत्य, तर्क–वितर्क एवं जीवन–मरण की परवर्ती काल में नई–नई व्याख्याएँ होती गईं, जिससे उनमें समयानुरूप परिवर्तन हुआ। समयानुरूपपरिवर्तन को स्वयं में समाहित करने के कारण ही ये मान्यताएं प्रतीक एवं बिम्ब आगे चलकर तरह–तरह के मिथकों के रूप में परिवर्तित हो गए। युगीन–सन्दर्भों के अनुसार स्वयं को ढालने के कारण इन मिथकों ने चिरंजीवी स्वरूप धारण कर लिया और स्वयं को एक ऐसे चमत्कार के रूप में परिवर्तिक कर लिया जो मानव–जाति को अपनी ओर आकर्षित की नहीं करता अपितु स्वयं में विलीन करने की सामर्थ्य रखता हैं मानव–संस्कृति में जो पौराणिकता है, वहीं इन मिथकों की जननी है। मिथक मूलतः मानव–जाति की भाव–निर्मात्री शक्ति की अभिव्यक्ति है।

'मिथक' शब्द मूलतः हिन्दी का शब्द है। हिन्दी–साहित्य में 'मिथक' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी द्वारा किया गया। द्विवेदी जी ने अँग्रेजी भाषा के 'मिथ' (डलजी) (अर्थ–शब्द, कथा, कहानी तथा कथन) शब्द में 'क' प्रत्यय जोड़कर इसे हिन्दी भाषा के अनुरूप ढाला है। तत्पश्चात् इसका प्रयोग हिन्दी भाषा में क्रान्तिकारी रूप से होने लगा। परन्तु संस्कृत साहित्य में आज भी मिथक शब्द का प्रयोग नगण्य हैं। हाँ, संस्कृत में पौराणिक आख्यान–उपाख्यान आरम्भ से ही मिलते हैं, जो कि मिथक के समकक्ष ही हैं। साहित्य–जगत् में मिथक शब्द का प्रयोग नितान्त अर्वाचीन होते हुए भी एक दार्घ पौराणिक विस्तृत परम्परा का धोतक है।

संस्कृत भाषा में मिथ्, मिथस् तथा मिथुस् शब्द प्राप्त होते हैं, जो मिथक शब्द से किंचित समानता रखते हुए भी पार्थक्य रखते हैं। 'संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ' के अनुसार 'मिथस्' मिथ्+असुन् से मिलकर बना है जिसका अर्थ है– चुपके–चुपके अर्थात् गुप्तरीत्या। 'मिथुस्' अव्यय पद है, जिसका अर्थ है– परस्पर, अन्योन्य। 'संस्कृत हिन्दी कोश' के अनुसार 'मिथ्' शब्द के अर्थ इस प्रकार हैं–

'मिथ्' (भ्वादिगण–उभयात्मक) मेथति–ते। सहकारी बनना, एकत्र करना, मैथुन करना, जोड़ा बनाना, चोट पहुँचाना, प्रहार करना, वध करना, समझना, प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना तथा जानना इत्यादि।

'मिथस्' (अव्यय)– परस्पर, आपस में, एक–दूसरे को[1]

आचार्य पाणिनी ने अष्टाध्यायी में 'कन्' प्रत्यय का प्रयोग 'इवे प्रतिकृतौ'[2] इस प्रकार किया है। कन् स्यात् 1 अश्व इव प्रतिकृतिः– अश्वकः । अर्थात् 'इव' अर्थ (सदृश अर्थ) में वर्तमान अर्थात् उपमान अर्थ वाले प्रातिपदिक से 'कन्' प्रत्यय होता है, यदि प्रतिकृति–मूर्ति या चित्र उपमेय हो तब।

इस प्रकार 'मिथ' शब्द में 'कन्' प्रत्यय लगाने से मिथक शब्द बनता है जिसका अर्थ होगा–मिथ इव मिथक (मिथ जैसा)। इस प्रकार 'कन्' प्रत्यय से संस्कृत एवं हिन्दी दोनों ही भाषाओं में इसकी संगति बैठ जाती है क्योंकि संस्कृत में जो अर्थ 'कन्' प्रत्यय का होता है वही अर्थ हिन्दी में 'वाला' का होता है।

यद्यपि महाकवि कालिदास ने 'मिथक' शब्द का प्रयोग नहीं किया है परन्तु उनका सम्पूर्ण साहित्य विभिन्न प्रकार के मिथकों से भरा पड़ा है। उन्होंने अपने साहित्य में स्थान–स्थान पर वैदिक एवं पौराणिक आख्यान–उपाख्यानों का उल्लेख किया है, जिनमें से अधिकतर समयानुकूल स्वयं को ढालकर तथा परिस्थितिनुसार स्वयं को प्रासंगिक बनाकर मिथक की श्रेणी आ चुके हैं। यूँ तो महाकवि का सम्पूर्ण साहितय ही मिथकीय–आख्यानों से भरा पड़ा है परन्तु 'रघुवंशम्' नामक महाकाव्य में इनका प्रयोग आद्योपान्त हुआ है, जिनमें से कुछ मुख्य एवं महत्त्वपूर्ण मिथक इस प्रकार हैं–

चन्द्रमा की उत्पत्ति सम्बन्ध मिथक :– 'रघुवंशम्' के प्रथम सर्ग में चन्द्रमा की उत्पत्ति का उद्देश्य बताते हुए कहा गया है–

तदन्वेय शुद्धिमति प्रसूतः शुद्धिमत्तरः।
दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव।।[3]

अर्थात् इन्हीं वैवस्वत मनु के उज्ज्वल वेश में राजाओं में चन्द्रमा के समान सबको आनन्द देने वाले, अत्यनत शुद्ध चरित्र वाले राजा दिलीप ने वैसे ही जन्म लिया जैसे क्षीर सागर में चन्द्रमा ने।

'रघुवंशम्' के त्रयोदश सर्ग[4] में यह कथा पुनः आयी है, जब लंका विजय के बाद श्रीराम पुष्पक विमान में बैठकर अयोध्यापुरी की ओर लौट रहें तब समुद्र के ऊपर से गुजरते हुए सीता जी को समुद्र के विषय में बताते हैं।

चन्द्रमा को शान्त स्वभाव वाला, शीतल किरणों वाला तथा सुखकर माना गया है। उसके दर्शन से मन हर्षित एवं आनन्दित होता है। इसके अतिरिक्त चन्द्रमा को औषधिपति भी कहा गया है अर्थात् जो स्वास्थ्य के लिए जो भी श्रेयष्कर है, वह सब चन्द्रमा के पास है। वेद में 'चन्द्र' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ऋग्वेद5 तत्पश्चात् अथर्ववेद6 में हुआ है। मैक्डानल महोदय का मानना है कि वेद में चन्द अथवा चन्द्रमा शब्द का प्रयोग 'सोम' अर्थ में हुआ है। यदि यहाँ सोम अर्थ भी ग्रहण किया जाए तो भी सोमरस वेद में वर्णित ऐसा पेय पदार्थ है जो देवों का पेय कहा गया है, जिसके पान करने से व्यक्ति को आनन्द की प्राप्ति होती है तथा सभी प्रकार के कष्टों से मुक्ति मिलती है। सोमपायी व्यक्ति आनन्द से परिपूर्ण एवं सामाजिक कार्यों में बढ़चढ़कर भाग लेता है। इन्द्र के समान उसके लिए कोई भी कार्य दुष्कर नहीं रह जाता।

यहाँ राजा दिलीप की उत्पत्ति की तुलना चन्द्रमा की उत्पत्ति से करने के पीछे यह तथ्य छिपा हुआ है कि राजा दिलीप भी संसार में आकर परिवार, समाज एवं राज्य के लिए उसी प्रकार सुखकर एवं कल्याणकारी होगें जिस प्रकार कि क्षीर–सागर से उदित हुआ चन्द्रमा संसार के लिए कल्याणकारी है।

हम आज भी देखते हैं कि जो व्यक्ति अत्यधिक प्रिय होता है, उसकी तुलना चाँद से कर दी जाती है, यथा बचपन में पुत्र, शैशव में 'मामा' और युवावस्था में जीवनसाथी चन्द्रमा सदृश बन जाता है। वर्तमान में हिन्दूओं में मनाये जाने वाले त्यौहारों में 'अहोई–आठें', 'भाई–दूज' एवं 'करवाचौथ' इत्यादि त्यौहार अपने प्रियजनों को चन्द्रमा के गुणों मुक्त मानने के प्रतीक हैं यही मिथक हैं। मिथक में किसी परम्परा या वस्तु के माध्यम से उस तथ्य को सीवित रखा जाता है, जो समाजोपयोगी, अधिकाधिक लोगों को अपने चमत्कृत स्वरूप के द्वारा आकर्षित करने वाला तथा किसी सत्य को अपने गर्भ में छिपाये होता है।

राहु द्वारा चन्द्रमा को ग्रसने सम्बन्धी मिथक

रघुवंशम् के द्वितीय सर्ग में यह उल्लेख मिलता है कि जब सिंह नन्दिनी गाय को पकड़ लेता है तब वह मनुष्य वाणी बोलते हुऐ कहता है कि जैसे चन्द्रमा का अमृत राहु को मिल जाता है, वैसे ही भगवान् शिव की कृपा से मेरे भोजन के समय यह गाय यहाँ उपस्थित हुई हैं अतः आज के मेरे भोजन के लिए यह पर्याप्त है–

तस्यालमेषा क्षुधितस्य तृप्त्यै प्रदिष्टकाला परमेश्वरेण।
उपस्थिता शोणितपारणा मे सुरद्विषश्चान्द्रमसी सुधेव।।[7]

यह वृतान्त पुनः आठवें (श्लोक–37) तथा बारहवें सर्ग (श्लोक–28) में भी आया है।

राहु द्वारा चन्द्रमा को ग्रसने का वृतान्त हमें वैदिक साहित्य से ही मिलना आरम्भ हो जाता है। अथर्ववेद में प्रसंग मिलता है– चन्द्र देव हमें शान्ति प्रदान करें। राहु के साथ हमें शान्ति देने वाले हों–

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा।[8]

वैदिक–साहित्य में यद्यपि नाम मात्र से इस वृतान्त का उल्लेख मिलता परन्तु इसका पूर्ण विकसित रूप हमें सर्वप्रथम 'महाभारत' के 'समुद्र–मन्थन' प्रकरण[9] में मिलता है। जब देवताओं के वेश में राहु देव–पंक्ति में स्थित हो मोहिनी रूपधारी नारायण से अमृत–पान कर रहा था ठीक उसी समय पर सूर्य तथा चन्द्रमा ने देवों के सम्मुख इस रहस्य का उद्घाटन कर दिया, जिससे चक्रधारी भगवान विष्णु ने उसका मस्तक चक्र से काट दिया। क्योंकि तबतक राहु अमृतपान कर चुका था परन्तु वह अमृत कण्ठ से नीचे नहीं उतर पाया था इसलिए उसका मुख्य तो अमृत पीने के कारण अमर हो गया परन्तु धड़ समाप्त हो गया। इसी वैर के कारण आज भी राहु सूर्य तथा चन्द्रमा को ग्रसता रहता है।

धर्मशास्त्रों में ग्रहण के समय सूर्य एवं चन्द्र–दर्शन वर्जित है। इसके मूल में निहित सत्य यह है कि ग्रहण के समय सूर्य एवं चन्द्रमा की किरणें हानिकारक हो जाती हैं। जो स्वास्थ्य एवं नेत्रों के लिए नुकसान देय होती हैं। 'भुवनस्य चक्षु' एवं 'पतिरोषधीनाम' दोनों ही उस समय स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक हो जाते हैं। अतः उनका जो नैसर्गिक रूप है (सर्वहितकारी रूप) वह समाप्त हो जाता है और चन्द्र का सोम्य, अमृतमयी, स्वास्थ्यवर्धक एवं शीतलता प्रदान करने वाला स्वरूप विपदीत स्वभाव को ग्रहण कर लेता है। उसकी सम्पूर्ण स्वाभाविकता को ग्रहण लग जाता है और वह सर्वहितकारी रू॰ से च्युत हो जाता है। उस सयम ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो उसके सभी गुणों को किसी दुष्ट ने ग्रस लिया हो। यद्यपि सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण एक भौगोलिक प्रक्रिया है परन्तु आज वैज्ञानिकों ने भी इस बात को स्वीकार कर लिया है कि ग्रहण के समय चन्द्रमा कला कुछ कम हो जाती है तथ्य उसकी किरणें हानिकारक हो जाती है।

अहल्या की कथा

रघुवंश के एकादश सर्ग में महर्षि गौतम के द्वारा अहल्या को शाप देने की कथा वर्णित है–

तैः शिवेषु वसतिर्गताध्वभिः सायमाश्रमतरूष्वगृह्यत।
येषु दीर्घतपसः परिग्रहो वासवक्षणकलत्रतां ययौ।।
प्रत्यपद्यत चिराय यत्पुनश्चारू गौतमवधूः शिलामयी।
स्वं वपुः स किल किल्बिषच्छिदां रामपादरजसामनुग्रहः।।[10]

विश्वामित्र ऋषि के साथ मिथिलापुरी की ओर चलते हुए राम व लक्ष्मण अभी कुछ दूर ही चले होंगे कि साँझ हो गई और वे उस वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे जहाँ महातपस्वी गौतम जी की स्त्री अहल्या थोड़ी देर के लिए इन्द्र की पत्नी बन गई थीं। भगवान राम के चरणों की धूलि सब पापों को हरने वाली थी, इसीलिए उसके दूते ही पति के शाप से पत्थर बनी अहल्या को फिर से इतने दिनों के बाद वही पहले वाला सुन्दर शरीर मिल गया था।

इन्द्र और अहल्या सम्बन्धी इस वृतान्त का स्रोत हमें ब्राह्मण ग्रन्थों एवं सूत्र–ग्रन्थों में भी मिलता है। सर्वप्रथम यह प्रसंग हमें शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। जहाँ यज्ञ के समय इन्द्र का आव्हान करते समय प्रयुक्त विशेषणों में एक विशेषण आया है 'अहल्यायै जारः' जिससे इस आव्यान की प्राचीनता पता चलती है। इसके बाद इस कथा का उल्लेख जैमिनी ब्राह्मण (2/79), षड्विंश ब्राह्मण(1/1), तैत्तिरीयारण्यक (1/12/3) तथा लाट्यायन श्रोतसूत्र (1/3/1) में भी प्राप्त होता है। आगे चलकर आर्षकाव्यों में इसका सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है। वाल्मीकि रामायण में यह कथा दो बार (बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड में) आयी है।

अहल्या वृतान्त एक मिथक है, यह बताते हुए आधुनिक संस्कृत जगत् के श्रेष्ठ विद्वानों में अग्रगण्य अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी कहते हैं कि सूर्य की ज्योति में अन्तर्लीन हो जाने वाली अमावस की कला से ही गौतम एवं अहल्या का मिथक विकसित हुआ है। गौतम का अर्थ ही है– सूर्य अर्थात् सर्वाधिक ज्योतिषमान् और अहल्या का अर्थ है– अमावस की चन्द्रकला, जो कि अदृश हो जाती है अहनि

लीयते इति अहल्या'। अमावस के दिन चन्द्रकला पूर्णतः सूर्य में लीन हो उठती है, इसलिए गौतम एवं अहल्या का मिथक समाज में हुआ।

सीता उत्पत्ति की कथा

सीता उत्पत्ति के सम्बन्ध में महाकवि कालिदास ने एकादश सर्ग में निम्न श्लोक में संकेत दिया है–

दृष्टसारमथ रूद्रकार्मुके वीर्यशुल्कमभिनन्द्य मैथिलः।
राघवाय तनयामयोनिजां रूपिणीं श्रियामिव न्यवेदयत।।[11]

अर्थात् राजा जनक ने जब देखा कि धनुष तोड़कर राम ने अपना पराक्रम दिखा दिया है तब उन्होंने राम का बड़ा आदर किया और पृथ्वी से उत्पन्न हुई अपनी कन्या जानकी उसी प्रकार राम के हाथ में सौंप दी जैसे साक्षात् अपनी लक्ष्मी ही उन्हें दे डाली हो।
यहाँ 'अयोनिजाम शर्ब्द' के द्वारा महाकवि ने सीता की उत्पत्ति की ओर संकेत किया है। इसके अतिरिक्त 11/48 में 'अयोनिजाम्' तथा 11/54 में 'पार्थिवीम्' इत्यादि शब्दों के द्वारा भी सीता की उत्पत्ति–विषयक वृतान्त की ओर संकेत किया गया है।
वैदिक साहित्य पर यदि दृष्टिपात किया जाये तो पायेंगे कि वहाँ सीता कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में वर्णित हैं–

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामते त्वा।
यथा नः सुभगासासि यथा नः सुफलाससि।।[12]

विष्णु पुराण में उल्लेख मिलता है कि जनक जी के पुत्र प्राप्ति हेतु हल जोतते हुए हल का फल टकरा जाने से एक सुन्दर कन्या सीता उत्पन्न हुई–

तस्य पुत्रार्थं यजनभुवं कृषतः सीरे सीता दुहिता समुत्पन्ना।[13]
वाल्मीकि रामायण में सीता–उत्पत्ति का प्रसंग इस प्रकार आया है–

अथ में कृषतः क्षेत्रं लांगलादुत्थिता ततः।।
क्षेत्रं शोधयता लबधा नाम्ना सीतेतिविश्रुता।
भूतलादुत्थिता सा तु व्यवर्धत समात्मजा।।[14]

यह कथा राजा जनक के द्वारा विश्वामित्र जी को धनुष तोड़ते समय सुनाई गई है। राजा जनक कहते हैं– हे मुनि! एक दिन मैं यज्ञ के लिए खेत में हल चला रहा था। उसी समय हल के अग्रभाग से जोती हुई भूमि से एक कन्या प्रकट हुई। सीता (हल द्वारा खींची गई रेखा) से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम सीता रखा।
'सीता' से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम सीता रखा गया। यहाँ सीता से तात्पर्य जोती हुई उर्वरा भूमि से है। ऐसी जमीन जिसे जोतकर बुवाई के योग्य बना दिया गया है, वही सीता है। यही कारण है कि वेद में सीता कृषि की देवी के रूप में मान्य हैं। जुताई के समय पृथ्वी पर हल द्वारा खींची गईं रेखाओं के अर्थ में प्रयुक्त सीता शब्द, उस आगामी सम्पन्नता का द्योतक है जो जनक रूपी किसान को लक्ष्मी अर्थात् पुत्री रूप में प्राप्त होने वाला है। प्राचीन समय में सीता शब्द कृषि सम्बन्धी सम्पन्नता एवं तत्सम्बन्धी मान्यताओं का द्योतक रहा है परन्तु परवर्ती काल तक आते–आते इसका प्रयोग राजाराम की धर्मपत्नी सीता के रूप में होने लगा जो पृथ्वी जैसी सहनशीलता से युक्त एवं स्वयं पर होने वाले प्रत्येक अत्याचार को धरती के समान ही मूक रहकर सहन करने वाली है। वैदिक काल के पश्चात् रामायण तक आते–आते इस कृषि की अधिष्ठात्री देवी ने मिथक का रूप ले लिया और एक सामान्य स्त्री के रू‍ में साहित्य में प्रचलित हो गई।
उपरोक्त इन कुछ प्रमुख मिथकों के अतिरिक्त रघुवंशम् अन्य अनेक मिथकों का प्रयोग हुआ है जिनका नाममात्र संकेत इस प्रकार है– शेषनाग द्वारा पृथ्वी को धारण करना, समुद्र–मन्थन, रावण द्वारा कैलास पर्वत को हिलाने का मिथक, परशुराम द्वारा क्षत्रियों के वध का मिथक वामनावतार द्वारा तीन पगों सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को नापने का, मिथक, गंगा की उत्पत्ति का मिथक, शिव द्वारा कामदेव को भष्म करने सम्बन्धी मिथक, सीता के पृथ्वी में समान का मिथक, तथा ब्रह्माजी की उत्पत्ति का मिथक।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मनुस्मृति – 2/147
2. पाणिनि, अष्टाध्यायी – 5/3/96
3. रघुवंशम्– 1/12, कालिदास ग्रन्थावली, सम्पादक–सीताराम चतुर्वेदी, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, तृतीय संस्करण
4. गर्भं दधत्यकर्मरीचयोऽस्माद्विवृद्धिमत्राश्नुवते वसूनि। अबिन्धनं वन्हिमसौ विभर्ति प्रल्हादनं ज्योतिरजन्यनेन।।4/13
5. ऋग्वेद – 1/105/1, 8/82/8, 10/64/3/ तथा 10/85/19
6. अथर्ववेद– 2/15/3, 2/22/1, तथा 3/31/6
7. रघुवंशम् – 2/39
8. अथर्ववेद – 19/9/10
9. महाभारत – आदि पर्व, अध्याय– 17–18 (श्लोक 37–90 तक)
10. रघुवंशम् – 11/33–34
11. रघुवंशम् – 11/47
12. ऋग्वेद – 4/57/6
13. विष्णु पुराण – 4/5/28
14. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड – 66/13–14